Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

वैदिक मूल्यो विश्वशान्ति के संदर्भ में

Dr Hetal M Pandya

Department of Sanskrit Gujarat University Ahmedabad

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

वेद में तो विशुद्ध मानववाद का दिव्य सन्देश है । वेद में मनुष्य के सच्चे विकास के लिए उसके आत्मिकबल के लिए, बहुत उदात्त आचार शास्त्र का संकलन है । वेद परमपिता परमेश्वर को सब प्राणियों का पिता घोषित कर प्राणिमात्र के प्रति समदृष्टि की भावना उत्पन्न करता है । वेद की दृष्टि में परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वनियन्ता है । उसके नियम अटल है । सदाचार एवं समष्टि भावना से ही व्यक्ति आत्मदर्शन करके ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है । वेद मानवमात्र को अमृत पुत्र घोषित करता है । उसका उद्घोष है, कि 'ये सब मनुष्य भाई है । इनमें कोई जन्म से बडा नही है, छोटा नहीं है इस समानता के भाव को धारण करते हुए सब एश्वर्य या उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करे ।' वेद कहता है कि दुराचारी व्यक्ति ऋत् के पथ को पार नहीं कर सकता – 'ऋतस्य पन्थाः न तरन्ति दुष्कृतः' । स्वर्ग या ज्योति की और ले जानेवाला देवयान मार्ग सुकृति अर्थात् सदाचारी व्यक्ति के लिए है – स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः । वेद में प्रार्थना है कि सर्वाग्राही देव ! आप सब के नियन्ता है । मुझे दुश्चरित से पृथक् करों और सब और से सदाचार का भागी बनाओं । में अमर देवों का अनुकरण करूं तथा दीर्घ आयुष्य, शोभनजीवन लेकर उपर ऊठ जाऊँ । इस प्रकार वेद समता, मातृभाव, विश्व-बन्धुत्व सम्बन्धी शिक्षाओं तथा सदाचार की शिक्षाओं का विश्वकोष ही सिद्ध होता है ।

प्राणिमात्र में मित्रदृष्टि :

वेद में उद्घोषित पूर्वक कहा गया है कि में मनुष्यों समेत सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखूँ – "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्नाम् । मित्रस्याहः चक्षुषा समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ।। अथर्ववेद में गौओं, जगत् के अन्य प्राणियों एवं मनुष्यमात्र के कल्याण की कामना की गयी है" स्वस्ति गोभ्यो जगते पुलषेभ्यः । एक अन्य मन्त्र में कहा गया है प्रभु हमारे दोपाये और चौपाये पशुओं के लिए कल्याणकारी और सुखदायी हों – शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे इस प्रकार यहाँ दोपाये मनुष्य, पक्षी आदि चौपाये पशुओं के कल्याण की कामना की गयी हैं । अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थल पर कामना की गयी है कि भगवान ऐसी कृपा कीजिये जिससे मैं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्राणी मात्र के प्रति सदीबावना रख सकूं- यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमर्ति कृधि ।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

समता एवं समष्टि की भावना :

ऋग्वेद में एक स्थान पर स्पष्ट रूप से कहा है कि ये सब मनुष्य भाई है, इनमें से कोई जन्म से बडा नहीं इस समानता के भाव को धारण करते हुए सब ऐश्वर्य व उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करते और आगे बढते है अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते, संभ्रातरो वावृधुः सौभाग्य । इससे पूर्व के मन्त्र में भी कहा कि "सब मनुष्य समान है उनमें कोई बडा छोटा नहीं और कोई माध्यम भी नहीं । ये अपनी शक्ति से उपर उठते हैं । ये महत्वकांक्षा से बढते है, ये जन्म से कुलीन, दिव्य मर्त्य है ।" इस मन्त्र का देवता "मरुतः" है जिसका मनुष्यवाची होना "यद् यूयं पश्निमातरो मर्तासः स्यातन । नरो मरूतो मृकता नस्तुवीमधासो अमृता ऋतज्ञाः । सत्यश्रुतः कलयो युवानः । " परा वीरास एतन मप्यासो भद्रजानयः इत्यादि से जहां नर, मर्य, मर्त आदि मनुष्यवाचक शब्दों तथा युवानः (युवक) भद्रजानयः (जिनकी अच्छी स्त्रियाँ) इत्यादि विशेषणों से स्पष्ट है, वहाँ सायणाचार्य में भी मनुष्यरूपा वा मरूतः इत्यादि वाक्यों द्वारा स्पष्ट स्वीकार किया है । सब चलने वालों का मार्ग पर समान अधिकार है" समानो अध्वा प्रवतामनुष्य दे । अन्यत्र कहा है सब का कल्याण सोचो, चाहे शुद्र हो चाहे आर्य प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशुद्र उतार्ये ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त समता का अत्यन्त दिव्य वर्णन प्रस्तुत करता है । हे भगवन् । समस्त सुखों के बरसाने वाले ! हे ज्ञान के प्रकाश प्रभो ! तू सबका प्रेरक होकर समस्त प्राणियों और समस्त तत्वों को मिलता है । तू भूमि पर अग्नि के तुल्य इस अन्न के बने देह में आत्मा के तुल्य वाणी को परम प्राप्तव्य, ज्ञातव्य पद ओंकार रूप में प्रकाशित होता है । वह तू हमें नाना ऐश्वर्य और लोक प्राप्त करा । हे मनुष्यो ! आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिल कर रहो । परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो । विरोध छोडकर एक समान वचन कहो । आप लोगों के सब मन एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करे । जिस प्रकार पहले के विद्वान जन सेवनीय और मनन करने योग्य प्रभु का ज्ञान सम्पादन करते हुए अच्छी प्रकार उपासना करते रहे हैं उसी प्रकार आप लोग भी ज्ञान- सम्पन्न होकर सेवनीय अन्न का सेवन और उपास्य प्रभु की उपासना करो । इन सब का वचन एक और विचार एक समान हो । परस्पर संगति मेल- जोल भी समान, भेदभाव से रहित हो । इनका मन एक समान हो । इनका चित एक दूसरे के साथ लिता हो । मैं आप लोंगो को एक समान विचारवान् करता हूँ और एक समान

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

अन्नादि पदार्थ प्रदान कर आप लोंगों को पालित पोषित करता हूँ । आप लोंगों के समकल्प और भाव अभिप्राय एक समान रहें । आपके हृदय एक समान रहें । आप लोंगों के मन समान हों जिससे आप लोंगों का परस्पर का कार्य सदैव सहयोगपूर्वक अच्छे प्रकार हो सकें ।

सम-भावना की प्रेरणा देनेवाला यह सूक्त वेद के समतापूर्ण दृष्टिकोण का ज्वलन्त उदाहरण हैं । इस में सब जनों की क्रियाओं, गति, विचारों और मन- बुद्धि के पूर्ण सामंजस्य की प्रेरणा दी गयी है । हम यह कल्पना कर सकते हैं कि इस सूक्त में प्रार्थित समान विचारोंवाली विवाह- रहित सभा समाज कितना उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करती हैं, सभी सभापदों को एक जन-कल्याण का दृष्टिकोण असन्दिग्ध रूप से राष्ट्र को उन्नति की और ले जाता हैं । आज हमारे देश में और समस्त विश्व में इस भावना की और अधिक आवश्यकता हैं ।

परिवार के सदस्यों में सौमनस्य :

वेदों में सौमनस्य सूक्तों में गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में जो उदात्त भाव प्रकट किये गये है, वे भी वैदिक धारा की महान निधि हैं । इनमें सभी जनों में समभाव, परस्पर सौहार्द की भावना व्यक्त की गयी है । यह अभिलाषा प्रकट की गयी है कि परिवार के सभी सम्बन्धी प्रेम-पूर्वक मिलजुल कर रहें क्योकि समाज का मूल परिवार है । सब एक दूसरे से मधुर-वाणी में बोलें और सबके मन एक समान हों । उनमें एक दूसरो के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो । यह सौमन्स्य प्रत्येक काल में रहे जिससे समाज में कलह न हों और सब कार्य सुचाकरूप से चलते रहे, फलतः राष्ट्र उन्नति करे और समृद्धि की प्राप्ति हो । स्नेह और सौहार्द का यह सन्देश आज के स्वार्थपरक युग में और भी आवश्यक हैं । अथर्ववेद के मन्त्रों में इस प्रकार कहा है कि प्रथम मन्त्र में हृदय की समानता, मन की समानता और विद्वेष- शून्यता की जो उपमा दी गयी है, उससे अधिक उपयुक्त उपमा इस प्रसंग में कोई नही हो सकती । नवजात बछडे के साथ गौ पूर्णतया एक रूप होती है । बछडे का तनिक सा कष्ट भी मानो उसका अपना कष्ट होता है । यह समानता केवल शारीरिक नहीं है, हार्दिक और मानसिक है । दूसरे मन्त्र का आशय यह है समाज में सम-भावना का आदार परिवार हैं ।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

अतः माता पिता के प्रति सन्तति का स्नेह और आज्ञाकारिता उसका प्रथम चरण हैं । इसी प्रकार जिस घर में पति और पत्नी में मधुर सम्बन्ध नही होगा, वहाँ समाज में भी उसका प्रतिफल लक्षित होगा । घरेलू असन्तोष से व्यक्ति बाहर के वातावरण को अनायास ही प्रभावित करता है । तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि भाई बहन का स्नेह परिवार की दृढता के लिए आधार का कार्य करता है । परिणाम स्वरूप वे साथ साथ चलते हुए, समान नियमों का पालन करते हुए मधुर और सभ्यवाणी बोलते हुए समाज की उन्नति तथा सौमनस्य की और ले जाते है । चोथे मन्त्र का भाव है मनुष्य यदि परस्पर झगडते है तो दैवी शक्तियाँ भी मानो कलहरत हो जाती हैं अर्थात् उन शक्तियों से जो कुछ प्राप्त होता है मनुष्य शान्तिपूर्वक उसका उपभोग नही कर सकता । पुरुषों में समान ज्ञानवाली बुद्धि हो तो देवता अर्थात् दैवी शक्तियां विमुख नहां होती अर्थात् उनसे प्राप्त द्रव्यो का पुरुष सुख पूर्वक उपभोग नही कर सकता । पुरुषो में समान ज्ञानवाली बुद्धि हो तो देवता अर्थात् दैवी-शक्तियाँ विमुख नही होती अर्थात् उनसे प्राप्त द्रव्यो का पुरुष सुखपूर्वक उपभोग करके समभाव से आनन्द प्राप्त करते हैं । पांचवे मन्त्र में मिलकर साथ-साथ कर्म करने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । सबको स्वार्थ छोडकर केवल एक उद्देस्य अपने सन्मुख रखकर कार्य करना चाहीए तभी कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है । राष्ट्र की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है । छठ्ठे मन्त्र में कहा गया है कि साथ-साथ खाना-पीना, उठना-बैठना हार्दिक सम्बन्ध का भी आदार होता है । प्रायः निकटता प्रकट करने के लिए साथ बैठकर खाना-पीना होता है । इसी प्रकार एक प्रकार के विचारों के व्यक्ति विविध प्रवृत्तियां और रुचियां होने पर भी अग्नि की सर्पया इश्वर की पूजा में एक साथ मिल जाते है – ठीक वैसे ही जैसे विविध दिशाओं में निकली हुई पहिये कि अरायें एक ही केन्द्र-बिन्दु मिली हुई होती है । सातवें मन्त्र में भी कहा है कि साथ साथ चलते कार्य करनेवाले, एक समान गतिवाले जनों का मन स्वाभाविक रूप से समान हो जाता है । अमरत्व या दीर्घायुष्य की रक्षा करती हुई दिव्य शक्तियों का मनोभाव जिस प्रकार एक जैसा शुभ होता है । उसी प्रकार समान भावनावाले, देशहित के एक उद्देस्य में निरत जनों का मनोभाव भी शुभ हों ।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

मानव-कल्याण की भावना –

ऋग्वेद में कहा है कि मनुष्य की सब ढंग से रक्षा और सहायता करनी चाहिए । अथर्ववेद में भी कहा है की आओ हम मिलकर एसी प्रार्थना करे जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सद्भावना का विस्तार हो । वेद इस तथ्य सं अपरिचित नही है कि मनुष्यों के विभिन्न वर्गो में अनेक प्रकार के विरोध या संधर्ष रहते ही है । ब्राह्मण- क्षत्रिय- वैश्य- शुद्र- निषाद इन पांचो प्रकार के मानव संघो का हित करना "पांचजन्य" शब्द वेद में बताया है । इसी प्रकार नरों का जो हित करता बै वह "नर्य" (नरेभ्यः हितः) कहलाता है । त्वम् आ विथ नर्यम् । तू नरों का हित करनेवालों का संरक्षण करता है । भूरीणिभद्रा नर्येषु बाहुषु । वीरों के बाहु मानवों का हित करनेवाले है और उन बाहुओं में बहुत कल्याण करनेवाले सामर्थ्य है । इन्द्राय... नरे नृतमाय नृणाम् । यह इन्द्र नेता है (नरे) अर्थात् लोगों को सन्मार्ग से ले चलता है, मानवों का हित करता है (नर्याय) और मानवों में सर्वश्रेष्ठ है (नृणां नृतमाय) । सखेव नर्या रुचे भव । मित्र जिस प्रकार मित्र का सहायक होता है वैसा तू सब मानवों का हित करता है । इसी प्रकार वेद में "मर्य" का प्रयोगारेथ भी मनुष्यों का हितकारक हैं । आचार्य सायण को भी यही अर्थ अभिप्रेत है – मर्या मनुष्येभ्यो हिताः ।

इस तरह "पांचजन्य, नर्य और मर्य इन पदों से जनहित करने का व्रत जीवन में ठान लेने का उपदेश किया गया है । केवल सार्वजनिक हित" इतना ही न कहते हुए वेद ने कहा है "पंचजनो का हित करो, नरो का हित करो, मर्त्यो का हित करो । बात एक ही है, सब मानवों का हित करने का उद्देश्य है, परन्तु उसमें कितनी बारीकी वेद में कही है यह विचार की दृष्टि से देखने का यत्न यहाँ करने की आवश्यकता है । वेद की दृष्टि में ऋषि वही है जो मनुष्यों का हितकारी है ।

ऋत और सत्य की भावना :

वैदिक नैतिक भावनाओं का मौलिक आधार ऋत् और सत्य का व्यापन सिद्धान्त हैं । बाह्य जगत का सारी प्रक्रिया विभिन्न प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही है । परन्तु उन सारे नियमों में परस्पर विरोध न होकर

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

एकरूपता या एक्य विद्यमान है । इसी को "ऋत" कहते है । इसी प्रकार मनुष्यो के जीवन के प्ररक जो भी नैतिक आदर्श है, उन सबका आधार "सत्य" है अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति सच्चा रहना यही वास्तविक धर्म है । परन्तु वैदिक आदर्श इससे बी आगे बढकर ऋत और सत्य को एक ही मौलिक तथ्य के दो रूप मानता है । इसके अनुसार मनुष्य का कल्याण प्राकृतिक नियमें और आध्यात्मिक नियमें में परस्पर अभिन्नता को समझते हुए उसके साथ अपने एकरूपता के अनुभव मे ही है । वेद में "ऋत" और "सत्य" की महिमा का हृदयाकर्षक वर्णन अनेक स्थानों पर पाया जाता है । ऋग्वेद में कहा है कि ऋत अनेक प्रकार की सुख-शान्ति का स्तोत्र है । ऋत की भावना पापों को विनष्ट करती है । मनुष्य को उद्बोधन और प्रकाश देनेवाली ऋत की कीर्ति बहिरे कानों में भी पहुंच चुकी है । ऋत की जडे सुदृढ हैं, विश्व के नाना रमणीय पदार्थों की कामना की जाती है । ऋत के कारण ही सूर्य-रश्मिया जल में प्रविष्ट हो उसको ऊपर ले जाती है । इसी प्रकार वेद में सत्य की महिमा का व्याख्यान करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार द्युलोक का धारण बाह्य लोक से सूर्य द्वारा हो रहा है वैसे ही वास्तविक रूप से इस भूमि का धारण सत्य के आश्रय से ही हो रहा है । वस्तुतः यदि इस संसार के सत्य को समाप्त कर दिया जाये तो कोई किसी पर भी विश्वास न करे तथा इस प्रकार सब लोकव्यवहार ही समाप्त हो जाए । अतः सत्य पर ही भूमी का आधार हैं । यह वैदिक उपदेश पूर्णतः यथार्थ है । अथर्ववेद के भूमि सूक्त में भी पृथ्वी के धारण करनेवाले पदार्थों में सर्वप्रथम सत्य का ही परिगणन किया गया है । यजुर्वेद में कहा गया है कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने सत्य और असत्य के रूपों को देखकर पृथक्- पृथक् कर दिया है । उनमें से श्रद्धा की पात्रता सत्य में ही है । अश्रद्धा की अनृत या असत्य में है । अन्य मन्त्र में कहा गया है कि व्रताचरण से ही मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उन्नत जीवन की योग्यता प्राप्त होती है । दीक्षा से दक्षिणा अथवा प्रयत्न की सफलता प्राप्त होती है । दक्षिणा से अपने आदर्शो में श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है । ऋग्वेद में कहा गया है कि उत्तम ज्ञान को प्राप्त करनेवाले पुरुष के लिए सत्य और असत्य वचन एकदूसरे का मुकाबला करते हुए पहुँचते हैं । उन दोनों में से जो सच और जो सरल वचन है सौम्य गुण युक्त पुरुष उसकी रक्षा करता है और जो असत्य वचन है उसका सर्वथा नाश कर डालता है । इसलिए प्रार्थना की गयी है कि "मैं वाणी में सत्य को प्राप्त करुं । वाचः सत्यमशीय । य.जु 39/4 समस्त दैवी शक्तियाँ मेरी रक्षा करे और मुझे सत्य में तत्पर रहने की शक्ति प्रदान करें । यज्ञ द्वारा में सत्य और श्रद्धा को प्राप्त

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

करुं । ऋत और सत्य की भावना ही वास्तव में अन्य वैदिक और आत्मविश्वास उत्पन्न किये बिना नही रह सकती । इस प्रकार सत्य के मार्ग पर चलो । ऋतस्य पथा प्रेत । सच्चा वाजं न जिग्युषे । सत्य के साथ जीतनेवाले योद्धा अन्न आदि पदार्थो से प्रतिक्षा पाते है । सुगा ऋतस्य पन्थाः । सत्य का मार्ग सुख से गमन करने योग्य सरल हों । ऋतस्य पन्थां न सरन्ति दुष्कृतः । सत्य के मार्ग दुष्कर्मो पार नही कर पाते । सत्या मनसो में अस्तु । मेरी मन की भावनाए सच्ची हों । अहमनृतात्सत्यमुपैमि । सत्य के पथ में परमेश्वर रक्षा करते है । सत्यं तातान् सूर्यः । सूर्य सत्य को ही विस्तारित करता है । भाव यह है कि सत्य और प्रकाश में समानता है । ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे । अर्थात् सृष्टि के नियमों की सत्ता सर्वत्र फैली हुई है । इत्यादि हजारों वैदिक सूक्तियाँ वैदिक आचार शास्त्र में "ऋत" और "सत्य" के सर्वोपरी महत्व को व्यक्त करती है ।

भद्रभावना –

वैदिक मन्त्रों की एक दूसरी अनोखी विशेषता उनकी भद्रभावना है । यह कल्याळ- भावना भोगैश्वर्य- प्रसक्त, इन्द्रिय-लोलुप या समयानुकुल अपना काम निकालने वाले आदर्शहीन जिसका यह विश्वास है हि उसका सत्य बोलना, संयत जीवन, आपत्तियों के आने पर भी कर्तव्य से मुंह न मोडना उसके स्वबाव उसके व्यक्तित्व के अन्तः स्वरूप की आवश्यकता है । श्रीमद्भगवतगीता की सात्विक भक्ति और निष्काम कर्म के मूल में यही आशामय, श्रद्धामय, कल्याण भावना निहित है । मानव को परमोच्य देव- पद पर बिठानेवाली यह भद्रभावना वैदिक प्रार्थनाओं में प्रायः देखने में आती है । अर्थात् हमे सब और से भली भावनाएं मिले । उनमें धोखा न हों । उनमें बाधा न हों । उनमें उन्नति ही उन्नति हो । उनमें देवता तुष्ट होकर दिन-दिन हमारी रक्षा करे, वृद्धि करे, हमारा सदा साथ दें । देवताओं की भली कल्याणी धारणा हमारे अनुकूल हों । देवताओं के दान का मुख हमारी और हो । हमने देवताओं की मित्रता प्राप्त ही है । वै हमारी आयु बढावे और हम पूर्ण जीवन पावें । हे देवताओं ! हम कानों से भला सुनें । हे पूजनीयों । हम आंखो से भला देखें । हमारा अङ्ग- अङ्ग स्थिर हो । हम सदा स्तुतिशील बने रहे । हमारे तन देखे – प्रदत्त आयुभर ठीक चले । हे सर्वजगतदुत्पादक परमेश्वर आप हमारे दुःखों और दुर्गुणों को दूर भगा दो । जो कुछ मङ्गलकारक हों उसे हमारे यहां ले

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

आओं ।

वैदिक वीरभावना :

यह संसार एक समर स्थली है । मनुष्य को बडे बडे संघर्षों में होकर गुजरना है । चारों तरफ विघ्न- बाधाएँ और शत्रुमुंह बाये खडे है और उसे हडपना चाहते है । इधर आन्तरिक क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि की पैशाची सेना मन पर आक्रमण करने का उपक्रम कर रही है । इधर सिंह- व्याघ्र- सर्प आदि भयानक जन्तु मनुष्य को अपना ग्रास बनाने के लिए तैयार है, तो उधर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि अनेक दैवी विपत्तियाँ उस काल कवलित करना चाह रही है । इधर धूर्त- वंचक छली लोग मनुष्य को अपने चुंगल में फसाने की चेष्टा कर रहे है तो उधर अत्याचारी लोग उसकी गर्दन को अपनी तलवार का निशाना बनाने पर उतारु हो रहे हैं । मनुष्य के लिए वेद की प्रेरणा हैं, कभी तु आततायी राक्षस के अत्याचार को सहन मत कर । "उद् वृह रक्षः समहमूलमिन्द्र । " हे वीर ! राक्षसो को जड समेत उखाड फेंक । पर, कहीं हम वेद के इन वचनों का यह अर्थ न लगा लें कि वेद ने हमें पैशाची हिंसा की लूट-फाट की, व्यर्थ उपद्रव मचाकर जगत् में अशान्ति फैलाने की अनुमति दे दी दै । नहीं वेद तो शान्ति के अग्रदूत बनकर हमारे सामने आते हैं । वेदों में तों भूमि- आकाश, सूर्य- चाँद- तारे, बादल- बिजली, वन- उपवन, तरु- लत्ता, नदी- पर्वत आदि प्रकृत्ति की एक- एक वस्तु के आगे शान्ति की पुकार मचायी गयी है । इसी से हम समझ सकते है कि वेद शान्ति के लिए कितने अधिक आतुंर है । परन्तु शान्ति इसका नाम नहीं है कि अत्याचारी हम पर अत्याचार करने आये और हम कायरों की तरह उसे सह लें । हमारी आँखो के सामने निरीह भोली जनता पर क्रूर अत्याचारियों की तलवार का नग्न नृत्य हो रहा हो और हम आँख मींच कर बैठे रहें, राक्षस शत्रु हमारे सुन्दर साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा हो और हम चुप रहें ।

स्थान-स्थान पर वेद के मन्त्रों में राक्षसो के संहार का वर्णन हैं । मनुष्य जहा इससे बाह्य राक्षसों के विध्वंस का सन्देश लेंगे, वहाँ साथ ही हृदय में उत्पन्न होनेवाले आन्तरिक राक्षसों के संहार की भावना को भी जागृत करेंगे । बहार

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

की तरह अन्दर देवासुर संग्राम चलता है । पापवृत्ति रूप राक्षस देववृत्तियों पर विजय पाना चाहते है । मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने तीव्र संकल्पबल के शस्त्रों से उनका पूर्णतः संहार कर दे । पाप, अन्याय, अत्याचार, अविद्या किसी भी कोटि के राक्षस को सहन मत करो । .

"तू मेरे अन्दर उत्साह, बल और कर्म को फूंक दे ।" वेद की ये कर्मयोग की प्रार्थनाएँ हमे सदा स्मरण रखनी चाहिए । साथ ही वेद का सन्देश भी हमारे सामने आ जाना चाहिए कि अन्याय और अत्याचार को नष्ट करने के लिए यदि हिंसा भी करनी पडे तो वो हिंसा नही, अपितु वीरता है । यदि कोई पुष्ट आततायी हम पर अत्याचार करने आता है तो हमारा कर्तव्य है कि वीरता के साथ मुकाबला करे, कायर न बने । अतः वेद मनुष्य का उदबोधन करता है । वीरो उठो आगे बढो विजय प्राप्त करो । इन्द्र तुम्हें सुख दे । तुम्हारी भुजाओं में बल हो जिससे कि तुम कभी पराजित न हो सको । हे वीर ! आगे बढ शत्रु पर वार कर परास्त कर दे । तेरे शस्त्र को कोई नहीं रोक सकता । शत्रु को झुकाने देनेवाला बल तुझ में विद्यमान है । आततायी को मार दे । तेरी निज प्रजाओं को शत्रु ने पकड लिया है उन्हे जीत ले । स्वराज्य आराधक बन । हे वीर ! राक्षसो का संहार कर, हिंसको को कुचल जाल, दुष्ट शत्रु की दाढे तोड दे । जो तुजे दास बनाना चाहे उस वैरी के क्रोध को चूर कर दे । हे वीरो सुदृढ हो तुम्हारे हथियार शत्रु को दूर भगाने के लिए, सुदृढ हों शत्रु के वार को रोकने के लिए । तुम्हारी सेना, तुम्हारा संगठन प्रशंसा के योग्य हो । उठो वीरो ! कमर कसलो झंडे हाथों में पकड लो । जो भुजंग है, लंपट है, पराये है, राक्षसो है, वैरी है, उन पर धावा वोल दो । आतयायी । तु तुझे निस्तेज, बुढा हुआ मत समझना । मत समझना कि तु आकर मुझे सता लेगा और चुपचाप सह लूंगा । यदि तू मेरी गाय को मारेगा, घोडे को मारेगा, मेरे सम्बन्धी पुरपषों को मारेगा तो याद रख, मै तुझे सीसे की गोली से बेध दूंगा । जो कोई व्यर्थ में कीसी का वध न करने वाले, किन्तु दुष्टो को पकड-पकड कर वध करनेवाले हम लोगों को मारने का संकल्प करेगा उसे मै जलती हुई आग की लपटो में झोंक दूंगा । जो कोई भले आदमीओं को शाप न देनेवाले किन्तु दुर्जनो को भी भरकर शाप देनेवाले हम लोगों को आकर कोसेगा । हमारे सामने आकर व्यर्थ गाली गलौच बकेगा । उसे मै मौत के आगे फेंफ दूंगा । जैसे कुत्ते आगे सूखी रोटी के टूकडे । अरे मुझे क्या तुमने साधारण मनुष्य समझा है । मै तो सूर्य हूँ, सूर्य । जैसे सूर्य

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

उदित होकर सब नक्षत्रों के तेज को हर लेता है, वैसा ही मै अपनी अपूर्व आभा के साथ जगत् में उदित होकर शत्रुता करनेवाले सब स्त्री पुरुषों के तेज को हर लूंगा । निश्चय ही हमारी विजय होगी, हमारा अभ्युदय होगा, शत्रु की सेना को हम परास्त कर देगें । मुझ से शत्रुता ठानने वाला जो अमुक पुरुष का बेटा और कोई माँ का बेटा है उसके वर्चस को, तेज को, आयु को मै हर लूंगा । उसे भूमि पर दे मारुंगा । मुझसे वैर करनेवाले दुष्टहृदयी द्वेषी शत्रु का सिर में काट डालूंगा । केवल वेद के पुरुषों में ही ऐसी वीर- भावना नहीं भरी हैं, किन्तु वेद की नारीयाँ भी ऐसे ही वीर-भावों से ओत-प्रोत हैं । एक नारी के उद्धार देखिये... अरे, यह घातक मुझे अबला समढ बेठा है ? वीरांगना हूँ, वीर की पत्नी हूँ । मौत से न डरनेवाले मेरे सखा है । मेरा पति संसार में अपनी तुल्यता नहीं रखता । मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुडा देनेवाले है, मेरी पुत्री अद्वितीय तेजस्विनी है । मेरे पति में उत्तम कीर्ति का निवास है । और में अपनी क्या बताऊँ ?

मेरा मन शिव संकल्प वाला हो :

वाजसनेय संहिता के मन सम्बन्धी प्रस्तुत मन्त्र मनोविज्ञान का सार प्रस्तुत करते है । प्रत्येक मन्त्र में मन शिव संकल्प होने की प्रार्थना के आधार पर इस मन्त्र समूह को- "शिव-संकल्प सूक्त" नाम से अभिहित किया जाता है । मनोवैज्ञानिक के मूलभूत गूढ तत्त्व इस सूक्त में अत्यन्त काव्यमयी भाषा में रखे गये है । उन मन्त्रों का सार यह है कि मनुष्य का मन सबसे अधीक प्रभावशाली हैं । उनकी शक्ति अपरिमित है, अतः यह दिव्य हैं । मनुष्य के सोते होने पर भी मन गतिशील होना अवचेतन मन की और संकेत करता है । जिस प्रकार बडी ज्योतियों (ग्रहो-नक्षत्रो) से मनुष्य का जीवन प्रभावित होता है उसी प्रकार मन से भी होता है । साररूप में यह कह सकते है कि मनुष्य वह हैं जो उसका मन है । यदि प्रत्येक व्यक्ति के मन में कल्याण की भावना आ जाये तो सारे संसार का चित्र परिवर्तित हो जाये । अतएव वैदिक ऋषि मनः शुद्धि के लिए मन्त्रों में शिव संकल्प करता है । मन शुद्धि की निरंतर प्रक्रिया के फल स्वरूप अन्त में मनुष्य का यह कहने का सामर्थ्य होता है - तेजोऽसि शुक्रमसि अमृतमसि धाम नामासि । प्रियं देवानाम् अनाधृष्टम् देवयजनमसि ।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

वेद में मनोबल को बढाने एवं मनोबल को क्षीण करने की कोशिश करनेवाले की दुर्गति बनाने का अदम्य उत्साह प्राप्त होता है । वैदिक वीर कहता है हे "देवो । सुन लो, मेरी इस भीष्म प्रतिज्ञा सु लो । आज मेरे बलवान् मन में प्रबल संकल्प उठ रहे हैं । जो कोई मेरे मनोबल की हिंसा करने आयेगा वह पाशबद्ध होकर दुर्गति को पायेगा । ओ मन के पाप । चल दूर हट मेरे पास से, क्यों निन्दित सलाहें दे रहा है ? चल भाग यहां से, वृक्षों से जाकर टकरां, जंगलों में भटकता फिर । मुझे फुरसत कहाँ है, जो तेरा स्वागत करूँ । मेरे मन तो गृहकार्यो में और गौ-सेवा आदि शुभ कार्यो में लगा है । कैसी आत्म-विस्वास भरी वीरतापूर्ण और सजीव उक्ति है । क्या ऐसे सतर्क साहसी व्यक्ति के मन में पाप कभी डेरा डाल सकता है ? आगे देकिये, अपने संकल्प बल को जागृत करता हुआ वीर कह रहा है जाग, जाग और मेरे संकल्पबल तू जाग । राक्षसो को मार गिरा, उन्हें घोर अन्धकार में धकेल दे । वे आतयायी निरिन्द्रिय और निवीर्य हो जाये, एक दिन को भी जीवित न बचने पायें ।

वेद में अच्थी बुद्धि एवं मेघा (तर्क शक्ति को धारण करना) सरस्वती वन्दना, विद्या-प्रेम, निष्पापहोना, निर्भयता, द्वेषत्याग एवं दीर्घायु होने के लिए पौनः पुन्येन प्रार्थना की गयी है ।

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में पवित्रजीवन के लिए कहा है कि हे अग्निदेव जो पवित्र और विशाल ब्रह्म तेरी ज्वाला में लस-लस कर रहा है, उससे हमें पवित्र करों । सब भूतगण मेरे विचार पवित्र करे । पवित्रकारी भगवान् मुझे पवित्र करे । मेरे अन्दर भक्तिभाव तथा कर्मण्यता का विकास हो । मुझे जीवन आरोग्य प्राप्त हो । हे सविता देव । पवित्रता और प्रेरणा दोनों द्वारा हमें पवित्र करो । हम देखकर चलनेवाले बने । अथर्ववेद में सम्पुष्टजीवन के लिए कहते है कि नदीयाँ सम्पुष्ट होती हुई खूब वहे । वायु सम्पूष्ट होती खुब चले, पक्षी सम्पूष्ट होते हुए खूब उडे । मै खूब धारावाहिनी आहुति से (सम्पुष्ट जीवन धारण करनेवाले इस) यज्ञ को करता हूँ । सुप्रकाश से युक्त (देवता) गण मेरे इस पूजन को स्वीकार करे, हे मिलकर बोलनेवाले पुरोहितो । आओ, मेरे इस यज्ञ में आकर बैठो और इसका विस्तार करो । (सुख साधन रूप) सब पशु मुझे प्राप्त हो जो धन-सम्पति है, वह इस (मुझ) में ठहरी रहे । जिस प्रकार नदियों से सोते सदा अक्षीण भाव भाव से (अपनी- अपनी धाराओं को आपस में) मिलाते हुए बहते है, उसी प्रकार धन की सभी धाराओं को मिलाकर हम अपनी

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

और बहते हैं, जैसे दृत, दूध और जल की अपनी-अपनी धाराओं को आपस में मिलने से उनके संयुक्त बहाव बहते है, वैसे ही (बडे-बडे) संयुक्त वहावो से हम धन को (समेटकर) अपनी और बहा कर ले आते है । इस जीवन-संपोषक यज्ञ का सब दिशाओं विस्तार हो । मैं खूब धारावाहिनी आहुति सं इसे सम्पन्न करता हूँ । मे प्रत्येक पशुओं और प्रत्येक पक्षीओं को घेरे में लेकर इसके घेरता हूँ । यजुर्वेद में यज्ञमय जीवन की सफलता के बारे में कहा है कि यज्ञ के द्वारा मेरी वृद्धिकारी शक्ति और मेरी सम्मुन्नत हों । मेरा दान और मेरा आदान यज्ञ के द्वारा समुन्नत हो । मेरा धर्म कर्म यज्ञ के द्वारा समुन्न हो । मेरी यज्ञाग्नि की ज्योति और मेरा यज्ञाग्नि का प्रकाश यज्ञ के द्वारा समुन्नत हो । मेरा प्राण और अपान, व्यान और श्वास, चित्त और चिन्तन, मेरी वाणी और मन, चक्षु और श्रोत्र यज्ञ के द्वारा सम्पन्न हो । मेरा धन और सम्पत्ति, पोषण और पुष्टि यज्ञ, वैभव और प्रभुताई, मेरी पूर्णता और पूर्णता भरी स्थिति यज्ञ के द्वारा सुमन्त हो । मेरा भूत और भविष्यत् स्वास्थ्य और स्वास्थ्य के उत्तम साधन, सामर्थ और सामर्थ्य की साधना मेरी मति और सुमति यज्ञ के द्वारा समुन्नत हो । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय । आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानं च वर्धय ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण चर्चा का अभिप्राय है कि मनुष्य बुद्धि समन्वित प्राणी होने से वैदिक ज्ञान एवं दर्शन का केन्द्र-बिन्दु तो मनुष्य ही है । अन्य प्राणी तो "भोगयोनि" में जन्मग्रहण कराता है और बुद्धिपूर्वक शुभकर्मो में प्रवृत्त होकर जन्मजन्मान्तरों के संस्कारो के बन्धन को काटकर मोक्ष पद का अधिकारी बन सक्ता हैं । यह लेख में वर्णित वैदिक मानवीय मूल्यों का अनुसरण ही चरम उद्देश्य (मोक्ष) की प्राप्ति की और ले जा सकते है ।

पादटीप

1. अज्येष्ठासौ अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधः सौभाग्य. (ऋ.पू.60/प)
2. परिमाग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतांऽनुं (यजु.4/28)
3. यजु- 36/18
4. ऋ. 5/60/5

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

5. ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्य्या आ नो अच्छा जिगातना (ऋ.5/59/9)
6. ऋ.2/13/3 अथर्व 19/62/?
7. सं संमिदयुवसे वृषसे वृषन्नग्ने विश्वन्यर्यआ । इक्तस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भरा । सङ्गच्छध्वं सङ्गलदध्व सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।। समानो मन्त्रः समितः समानी समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् समानं मन्त्रंभिमन्त्र्ये वः समानेन वो हविषा जुहोमि । समानी आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो वः सुसहासति ।। ऋ. 10/191
8. सहृदयं सामन्स्यविद्वेषं कृणोमि वः अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या ।। अनुव्रतः पुत्रो मात्रा भक्तु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचंवदतु शन्तिवाम् ।। मा भ्राता भ्रातरं दिक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्यः सव्रता भूत्वां वाचं वदत भद्रया ।। येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । सत्कृणमो ब्रह्म वो गृहे संज्ञान पुरूषभ्यः ज्यायस्वन्तश्चितिनो योष्ट संराधयन्तः सधुरार चरन्तः । अन्यो अन्यायै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनस- स्कृणोमि । समानी प्रथा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वोयुनज्मि । सम्यञ्चोऽग्नि सपर्यतारा नाभिमिवामितः ।। सध्रीचीनानि वः संमनसस्कृणोभ्यक श्नुष्टीनत्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ।। (अथर्व.3/30/1-7)
9. पुमान् पुमासं परि पातु विश्वतः (ऋ.6/75/14)
10. तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः (अथर्व.3/30/)
11. पुरद्रुहो हि क्षतयो जनानाम् (ऋ.3/18/1)
12. (ऋग्.1/54/6)
13. (ऋग्.1/166/10)
14. (ऋग्.4/25/)
15. (ऋग्.9/105/5)

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

16. (ऋग्.10/29/1)
17. (ऋग्.5/53/3)
18. ऋषिः स यो मनुर्हितः (ऋग्.10/26/5)
19. ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीऋतस्य धीतिर्वृजिनानिहन्ति श्लोको बधिरा ततर्द कर्णाबुधानः शुचमान आयोः ।। ऋतस्य दृकहा घरूणानि सन्ति पुरूणि चन्देरा वपुषे वपूंसि ।। ऋतेन दीर्धमिषमन्त पृक्ष ऋतेन साव ऋतमा विवेशुः (ऋग्.4/29/8-9)
20. सत्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौ । (ऋग्.10/85/1)
21. सत्यं बृहद्रुतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति । (अथर्व.12/1/1)
22. दृष्टवा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽघाच्छाद्वां सत्ये प्रजापतिः ।। (यजु.19/30)
23. व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षापाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्दामाप्नेति सत्यमाप्यते ।। (यजु.19/30)
24. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते । तयोर्तत्ससत्यं यतरद्दजीयस्तदित्सोमोऽवति बन्त्यासत् (ऋग्.7/104/12)
25. देवा देवैखन्तु मा .... सत्येन सत्यम् (यजु। 20/11-12)
26. सत्यं च मे श्रद्धा चमे.. सत्येन सत्यम् (यजु.18/5)
27. (यजु.7/45)
28. अथर्व.(ऋ.20/98/2)
29. (ऋ.8/31/13)
30. (ऋ.9/13/6)
31. (ऋ.10/128/)
32. (यजु.1/15)
33. (ऋ.1/105/12)

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

34. (ऋ.8/86/5)
35. आ नो भद्रां ऋतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उदीभदः
36. (ऋ.3/30/17)
37. प्रेता जयता नरइन्दरो वः शर्म यच्छतु । उग्राः वःसन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ (ऋ.10/103/13)
38. प्रह्मभी हि धष्णुहि न ते वज्रो निर्यसते । इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रंजया अपोऽर्चन्नु स्वराज्यम् ।। (ऋ.1/80/3)
39. विरक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनूरूज । विमन्दुमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्यामिदासतः ।। (ऋ.1/152/3)
40. स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदेवीक्त उतप्रतिष्कमे । युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ।। वृत्रहन्नमित्रस्यामिदासतः ।। (ऋ.1/39/2)
41. उत्तिष्ठत संनह्मध्वमुदाराः केतुमिः सह । सर्पा इतरजना रक्षास्यमित्राननु धावत ।। (अथर्व.11/10/1)
42. यदि नो गां हसि, यदयश्वं यदि पुरुषम् । तं त्वा सीसेन विध्यामो, यथा नोऽसो अवीरहा ।। (अथर्व.1/16/4)
43. यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यस्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ।। (अथर्व. 4/16/4)
44. यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् । शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं, तंप्रत्यस्यामि मृत्यवे ।। (अथर्व.6/37/3)
45. यथा सूर्यो नक्षत्राणा मुचंस्तेस्याददे । एवा स्त्रीणां च पुसां च द्विषतां वर्च आ ददे ।। (अथर्व.7/13/1)
46. जितमस्माकमुदिमन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
47. अरातीयोर्भातृव्यस्य दुर्हार्दे द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा । (अथर्व.10/6/1)
48. अवीरमिव मामयं शरारुरभि मन्यते । उताहमस्मिवीरिणीन्द्र पत्नी मरुत्सरवा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः । (ऋ.10/86/1)
49. मम पुत्रां शत्रुहणोऽथो में दुहिताविराट । उताहमस्मि सज्जया पत्यौ में श्लोक उत्तमः (ऋ.1/59/3)
50. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दुरडगमं ज्योतिषो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । (यजु.13/31)

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

51. इदं देवाः श्रुणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्यानि शंस्ति । पाशे सबद्धो र्दुरते नियुज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति । (अ.2/12/2)
52. धियं वनेम ऋतया सपन्तः । (ऋ.2/11/12) मेधा महं प्रथमा ब्रह्मवती, ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् पावकाः नः सरस्वती वजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः । विद्याऽमृतमश्नुते । (यजु.40/14/) सिंहा इव नानदति प्रचेतसः । (ऋ.1/64/8) अप नः शोशुचदमा ।। (ऋ.1/67/1) अभयं नः करत्यन्तरिक्षम् भयं द्यावा पृथवि उभे इमे । यत इन्द्र भयावहे ततो नोअ भयं कृधि । मधवंछग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विपो वि मृधो जहि ।। (अ.19/15/5,) (19/15/1) विस्वा द्वेषासि प्रभुमुग्धध्यस्मत् । (ऋ.4/1/4) स नः पर्,द अतिद्विषः (अ.6/38/3)
53. यत् ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः । पुन्नतु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा । पवमानः पुनात् मा ऋत्वे दक्षाय जीवसे । अथो अरिष्टतातये । उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । अस्मान् पुनीहि चक्षसे ।। (ऋ.9/37/21) (अथर्व.6/19/1-3)
54. सं सं स्रवन्तुः सं वाताः सं पतत्रिणः ईमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां सं स्रा व्येण हविषा जुहोमि । अथर्व (1/15/1) रुपं-रुपं वयो वयः संरभ्यैन परिष्वजे ।
55. वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्य मे प्रसितिश्च धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वच्छः श्लोकश्च मे ।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

सन्दर्भग्रन्थसूचि

1. ऋग्वेद संहिता – स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वेंकट माधव तथा मुद्गलकृत भाष्य सहित, संपा. विश्वबन्धु । 1962-65
2. ऋग्वेदभाष्य – संपा.पं.युधिष्ठिर मीमांसक, 1979
3. यजुर्वेदभाष्य – सं.विश्वबन्धु, होशियारपुर, 1960
4. सामवेद (आर्चिक, कौथुमशाखीय) संपा. नारायण स्वामी दीक्षित, स्वाध्याय मंडल, औंध, 1942
5. अथर्ववेदः (शैनकीये) सायणभाष्य, सं विश्वबन्धु, 1961

English

1. Rigvedic India and Rigveda Culture, A.C.Das, Calcutta, 1925.
2. The Rigveda and vedic Religion, Clayton.
3. The Religion and Philosophy of the people Of India (O.S.T.) Muri Vol.2nd Edition, Landon, 1968.